आधुनिक जीव विज्ञान से आयुर्वेदिक दवा की जांच

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

आधुनिक औषधि विज्ञान अणु-आधारित है, वह भी अक्सर एकल-अणु-आधारित। ऐसी उम्मीद की जाती है कि आम तौर पर कोई अणु शरीर क्रिया के किसी एक चरण को या कभी-कभार चरणों की एक श्रृंखला पर क्रिया करेगा। अलबत्ता, मधुमेह जैसे विकार कई सारी अलग-अलग जैव रासायनिक क्रियाओं को प्रभावित करते हैं और ऐसे मामलों में एकल-अणु आधारित तरीका अपर्याप्त रहता है। ऐसे ही मामलों में एकाधिक घटकों वाले मिश्रण उपयोगी साबित होते हैं। लाख टके का सवाल यह है कि कौन-से घटक?

आधुनिक औषधि वैज्ञानिक कहेंगे कि उनके नुस्खे प्रमाण-आधारित हैं जबकि पारंपरिक वैद्य या हकीम के नुस्खे अनुभव-आधारित होते हैं। क्या ये दो पद्धतियां कभी साथ-साथ आएंगी? क्या हम पारंपरिक औषधियों का उपयोग आधुनिक जीव विज्ञान और औषधि विज्ञान की गहनता से कर सकते हैं ताकि प्रमाणीकरण और सत्यापन हो सके।

आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध व अन्य प्राच्य चिकित्सा पद्धतियों की औषधियां प्रायः मिश्रण होती हैं। आम तौर पर जड़ी-बूटियों या कभी-कभी जंतुओं के काढ़े वगैरह। लिहाज़ा, पारंपरिक चिकित्सक का तरीका अणुवालों के तरीके से भिन्न होता है। और इसी मामले में मतभेद शुरू होते हैं और बने रहते हैं।

आधुनिक औषधि वैज्ञानिक कहेंगे कि उनके नुस्खे प्रमाण-आधारित हैं जबकि पारंपरिक वैद्य या हकीम के नुस्खे अनुभव-आधारित होते हैं। दूसरी ओर, वैद्य और हकीम कहते हैं कि उनकी पद्धति जांची-परखी है और आज भी काम करती है। जहां तक मरीज़ का सवाल है, तो वह तबियत ठीक करने के लिए कुछ भी आज़माने को तैयार है। क्या ये दो पद्धतियां कभी साथ-साथ आएंगी? क्या हम पारंपरिक औषधियों का उपयोग आधुनिक जीव विज्ञान और औषधि विज्ञान की गहनता से कर सकते हैं ताकि प्रमाणीकरण और सत्यापन हो सके?

चीन के लोगों ने इस काम को एक मिशन के रूप में उठाया है। हमारे यहां भी मणिपाल विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एम.एस. वलियाथन ने कुछ आयुर्वेदिक क्रियाओं पर कुछ काम शुरू किया है। इसके लिए वे आयुर्वेदिक शालाओं (कोट्टक्कल आर्य वैद्यशाला) और आधुनिक जीव वैज्ञानिकों (प्रतिरक्षा विज्ञानियों, जिनेटिक्स विदों, जैव रसायनज्ञों, कोशिका जीव विज्ञानियों, पदार्थ वैज्ञानिकों और रसायनज्ञों) को साथ-साथ लाए हैं। इन्हें साथ लेकर उन्होंने दो बड़ी-बड़ी परियोजनाएं शुरू की हैं।

पहली परियोजना है शरीर क्रिया पर पंचकर्म के प्रभावों का आकलन। इसमें प्रतिरक्षा विज्ञान तथा अन्य सम्बंधित विधियों का इस्तेमाल किया जाएगा। इस परियोजना के नतीजों को व्यवस्थित करके मूल्यांकन का काम चल रहा है। इसी दौरान दूसरी परियोजना के शुरुआती नतीजे हाल ही में प्लॉस-वन में प्रकाशित हुए हैं। यह परियोजना बनारस विश्वविद्यालय में विकासात्मक जीव विज्ञान के प्रोफेसर सुभाष लखोटिया की प्रयोगशाला में उनके सहयोगियों विभा द्विवेदी और मौसमी सुतसुद्दी के सहयोग से चल रही है।

इस अध्ययन में दो आयुर्वेदिक औषधियों का असर एक जंतु मॉडल (*ड्रॉसोफिला मेलेनोगेस्टर*) की शरीर क्रिया पर परखने के प्रयास हो रहे हैं - अमलाकी रसायन और रस सिंदूर।

अमलाकी रसायन आंवले से चार चरणों में बनाया जाता है। सूखे आंवले का चूर्ण 3 चरणों में प्राप्त किया जाता है। इस चूर्ण को शहद और घी में एक निश्चित तरीके से मिलाया जाता है। यह काम कोट्टक्कल आर्य वैद्यशाला द्वारा किया जाता है। इसी प्रकार से रस सिंदूर बनाने के लिए पारद सल्फाइड का अति महीन चूर्ण लेकर तीन चरणी प्रक्रिया की जाती है।

अमलाकी रसायन और रस सिंदूर बनाने का तरीका कोट्टक्कल समूह द्वारा मानकीकृत किया गया है। इन दोनों का ही उपयोग आयुर्वेद में स्वास्थ्यवर्धक औषधियों के रूप में होता है।

जब प्रायोगिक जंतुओं पर आयुर्वेदिक औषधियों के वैज्ञानिक परीक्षण की बात आती है, तो पहली ज़रूरत इस बात की है कि अच्छे जंतु मॉडल विकसित किए जाएं ताकि विभिन्न आयुर्वेदिक औषधियों की क्रियाओं और क्रियाविधियों का गहन अध्ययन किया जा सके।

सवाल है कि *ड्रॉसोफिला मेलेनोगेस्टर* (यानी फलों पर मंडराने वाली छोटी-सी मक्खी) को क्यों चुना गया। इसके कई कारण हैं: 1. यह मक्खी मीठी चीज़ों पर पलती है और अमलाकी रसायन और शायद रस सिंदूर पर भी अच्छी तरह पलेगी। 2. इस मक्खी का पूरा जीवन चक्र और जिनेटिक्स व शरीर क्रिया भलीभांति समझी जा चुकी है, इसलिए इसकी हर अवस्था (लार्वा, प्यूपा, वयस्क) में औषधि के प्रभावों का आकलन आसान होगा। 3. इन मक्खियों का जीवन चक्र चंद दिनों का होता है, इसलिए छोटी-सी अवधि में इनकी कई पीढ़ियों का अध्ययन हो सकता है। 4. प्रोफेसर लखोटिया फल-मक्खी के विकास और जिनेटिक्स के खासे विशेषज्ञ हैं।

अध्ययन के दौरान क्या पता चला?

1. अमलाकी रसायन पर पली मक्खियां अन्य मक्खियों की बनिस्बत ज़्यादा दिन जीती हैं। जब उनके भोजन में 0.5 प्रतिशत अमलाकी रसायन मिलाया गया तो उनकी औसत आयु 40 दिन रही जबकि अन्य की औसत आयु 36 दिन रही। अलबत्ता ज़्यादा खुराक हानिकारक रही - भोजन में 1 प्रतिशत अमलाकी रसायन मिलाने पर औसत आयु घटकर 30 दिन रह गई।

2. अमलाकी रसायन के प्रभाव से आयु बढ़ने के अलावा मक्खियों का विकास भी जल्दी होता है - अंडे से लार्वा, प्यूपा व मक्खी के निकलने की अवधि में चंद घंटों की कमी आई।

3. लगता है कि ऐसी मक्खियां ज़्यादा अंडे देती हैं।

4. अमलाकी रसायन और रस सिंदूर का सेवन करने वाली मक्खियां गर्मी को ज़्यादा सहन कर पाती हैं।

5. इसके अलावा, इन औषधियों का सेवन करने वाली मक्खियां भुखमरी को भी ज़्यादा सहन कर पाती हैं यानी वे बगैर भोजन के सामान्य से ज़्यादा दिन जी सकती हैं।

जैविक प्रभावों के मामले में उपरोक्त दो नुस्खों में से अमलाकी रसायन बेहतर प्रतीत होता है। अलबत्ता, कुछ वैज्ञानिकों के मन में जो शंका रही है कि पारा शरीर के लिए ज़हरीला है, वह यहां लागू होती नहीं लगती। अभी यह पता नहीं है कि क्या यह पारद सल्फाइड को बनाने के तरीके का परिणाम है।

एक चीनी दल ने पता लगाया है कि सिंदूर मानव शरीर में ज़हरीले मिथाइल मर्क्यूरी में तबदील नहीं होता है। यह भी लगता है कि अमलाकी रसायन को बनाने में प्रयुक्त घी और शहद का लाभदायक असर में कोई योगदान नहीं है। यदि इनका सेवन अकेले किया जाए, तो उपरोक्त में से कोई असर नज़र नहीं आता। दूसरी ओर, अमलाकी रसायन का सूखा चूर्ण भी उतना प्रभावी नहीं होता।

तो वलियाथन-कोट्टक्कल-लखोटिया तिकड़ी ने फल-मक्खी पर अमलाकी रसायन के लाभदायक जैविक असर दर्शाए हैं। यहां शरीर पर किसी औषधि के असर को परखने हेतु फल-मक्खी एक उपयोगी व स्वीकार्य मॉडल है। मगर मक्खियां मनुष्य तो नहीं हैं। न ही चूहे मनुष्य हैं।

क्या यही प्रयोग चूहों या अन्य स्तनधारी जंतुओं पर दोहराए जाने चाहिए? मुझे यकीन है कि उपरोक्त तिकड़ी वही करने जा रही है।

अलबत्ता, फिलहाल जो स्थिति है, उसमें फल-मक्खियों पर प्रयोगों से हम क्या सीख सकते हैं? एक तो मध्यमार्ग का महत्त्व देखिए - किसी भी चीज़ की अति बुरी होती है। 0.5 प्रतिशत से आयु बढ़ती है मगर पूरा 1 प्रतिशत कर देने पर आयु घट जाती है। और यह खुराक भुखमरी को झेलने की क्षमता बढ़ाती है (कृपया भूख हड़ताली ध्यान दें)। मगर सबसे अहम बात यह है कि इस तिकड़ी ने दिखाया है कि आधुनिक जीव वैज्ञानिक प्रमाण आधारित औज़ारों का उपयोग पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों के प्रमाणीकरण और जांच में संभव है। ***(स्रोत फीचर्स)***